|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 10: विभूतियोग

3/3 (श्लोक 22-42), रविवार, 05 फ़रवरी 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/m5PSGAO2izk

श्रीभगवान की विभूतियों का वर्णन

जीवन की बगिया में हरि प्रेम के पुष्प को खिलाने के लिए दीप प्रज्वलन तथा गुरु वंदना के साथ इस सत्र का शुभारंभ हुआ। गीता के समान कल्याणकारी ग्रंथ कोई नहीं है। यह हमें गुरुजनों ने बताया है कि गीताजी पढ़ने का सौभाग्य हमें हमारे पूर्वजों के आशीर्वाद से ही प्राप्त होता है। महापुरुषों ने कहा है कि हम गीता जी का पठन-पाठन तभी कर सकते हैं जब भगवान की कृपा होती है।

बिनु हरि कृपा मिलहि नहि संता।

बिना कृपा के संत नहीं मिलते और बिना संत के गीता का सानिध्य नहीं होता। इसलिए यह ध्यान रखने योग्य बात है कि हमने गीता जी को नहीं चुना, हम चुने गए हैं। इसलिए धैर्य पूर्वक तथा सदा ध्यान पूर्वक गीताजी का मनन और चिंतन करना चाहिए। इक्कीसवें श्लोक में हमने देखा कि बारह आदित्य है। आठ वसु हैं और दो अश्विनी कुमार है तथा ग्यारह रूद्र है। सभी को मिलाकर तैंतीस कोटि देवता होते हैं। भगवान ने कहा कि उन बारह आदित्यों में विष्णु मैं हूँ। जिसमें वामन भगवान का कथा का भी वर्णन हुआ था तथा उनचास मरूत देवताओं में वायु स्वयं भगवान है और नक्षत्रों का अधिपति चंद्रमा स्वयं श्रीभगवान ही हैं।

10.22

वेदानां(म्) सामवेदोऽस्मि, देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां(म्) मनश्चास्मि, भूतानामस्मि चेतना॥10.22॥

(मैं) वेदों में सामवेद हूँ, देवताओं में इन्द्र हूँ, इन्द्रियों में मन हूँ और प्राणियों की चेतना हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं कि वेदों में, मैं सामवेद हूँ। वेद चार होते हैं-

1) ऋग्वेद
2) सामवेद
3) यजुर्वेद

4) अथर्ववेद।

वेदों की जिन ऋचाओं को गाया जाता है, वे सामवेद कहलाती हैं। जिसमें कर्मकांड की विधियाँ हैं, वे यजुर्वेद कहलाती हैं। जो गाकर कहा जाता है, वह अति प्रिय होता है। यदि किसी बात को गीत, दोहे या छंद में कहा जाता है तो उससे हमारा जुड़ाव अधिक होता है। इसी प्रकार गद्य में कही गई बात यदि पद्य में कही जाती है तो वह जल्दी समझ में आती है और हम जुड़ भी जल्दी जाते हैं। देवताओ में, मैं इंद्र हूँ। देवेंद्र एक पदवी है, कोई व्यक्ति नहीं है। पुण्य प्राप्त करके कोई भी इंद्र पद को ग्रहण कर सकता है और पुण्य क्षीण होने पर उस पद से वंचित भी होना पड़ सकता है। इंद्र पद एक निश्चित समय अवधि का ही हो सकता है। एक निश्चित समय के बाद उस व्यक्ति को इंद्र पद को छोड़ना पड़ता है। जैसे हमारे यहाँ राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री का पद भी पाँच साल का होता है। एक निश्चित समय के पश्चात उस पद को त्यागना पड़ता है। उसी प्रकार देवताओं के राजा इंद्र को भी अपना पद त्यागना पड़ता है। इंद्रियों में, मैं मन हूँ। वैसे तो पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं और पाँच ज्ञानेंद्रियाँ हैं। इन इंद्रियों का स्वामी मन मैं हूँ। इंद्रियों का स्वामी मन है। इसके बिना इंद्रियाँ विषय रसों को ग्रहण नहीं कर सकती हैं। वह मन स्वयं श्रीभगवान है। हमारी आँखें देखते हुए भी अगर मन से जुड़ी हुई ना हो तो वह दृश्य हमारी आँखों में समाता नहीं है। हम बैठे रहते हैं तथा हमारा मन कहीं और डूबा रहता है, फलस्वरूप आँखें देखती हैं, किन्तु स्मृति में नहीं रहता है। कोई सामने से चला जाए तो भी हम उसका चेहरा ध्यान से नहीं देख पाते हैं। अगर कोई आकर पूछे कि कौन गया था? तो हम यह जवाब देते हैं कि पता नहीं कौन था? वह कहता है कि आप तो यहीं थे और तब हम कहते हैं बैठे तो थे, पर ध्यान कहीं और था। आँख के साथ यदि मन का जुड़ाव ना हो तो वह दृश्य हम देख कर भी नहीं देख पाते हैं। जिन इंद्रियों के साथ मन जुड़ जाता वही इंद्रियाँ सक्रिय हो जाती हैं। इसलिए मन को सभी इंद्रियों का स्वामी कहा गया है। सभी प्राणियों में भगवान चेतना है। सभी मनुष्यों की संरचना तो एक जैसी है पर इन रचनाओं का महत्त्व तभी तक है, जब तक इसमें चेतना है। हम इस शरीर के प्रति बहुत सजग रहते हैं। इसकी खूब सेवा करते हैं। यह तभी तक है जब तक इसमें चेतना है, जैसे ही शरीर चेतना विहीन हो जाता है, उस शरीर को घर वाले भी नहीं रखना चाहते हैं। जल्दी से जल्दी दाह संस्कार करने में लग जाते हैं। किसी आने वाले परिवारजन का इंतजार भी नहीं करते। चेतना विहीन होने पर भी शरीर तो वही का वही रहता है। एक ग्राम भी वजन घटता या बढ़ता नहीं है। मरने के बाद, चेतना जाते ही लोग जल्दी से जल्दी दाह संस्कार कर देते हैं। भगवान कहते हैं कि सभी प्राणियों में जो चेतना है, वह मेरी ही विभूति है।

10.23

रुद्राणां(म्) शङ्करश्चास्मि,वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां(म्) पावकश्चास्मि, मेरुः(श्) शिखरिणामहम्॥10.23॥

रुद्रों में शंकर और यक्ष-राक्षसों में कुबेर मैं हूँ। वसुओं में पवित्र करने वाली अग्नि और शिखरवाले पर्वतों में सुमेरु मैं हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान आगे कहते हैं कि ग्यारह रुद्रों में मैं शिव हूँ। शिव पुराण के अनुसार ग्यारह रुद्र निम्न प्रकार के हैं--

1) कपाली
2) पिंगल
3) विरुपाक्ष
4) विलोहित
5)अजपाद
6)अहिर्बुंध्य
7) शास्ता
8) भीम
9) शंभू
10) चण्ड
11) भव्य

हनुमान जी बारहवें रूद्र माने जाते हैं। भगवान के अनुसार इन ग्यारह रूद्रों में जो शंकर है, वह मेरी विभूति है। इस प्रकार जो शैव तथा वैष्णव के बीच में अंतर्विवाद है और वह भी भगवान ने मिटा दिया कि बारह आदित्यों में, मैं विष्णु और ग्यारह रूद्रों में शिव मैं हूँ। विष्णु भी मैं ही हूँ और शिव शंकर भी मैं ही हूँ। भगवान ने विष्णु और शंकर दोनों को ही अपनी विभूति कहा है। यक्ष राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर मैं हूँ और वसुओं में अग्नि मैं हूँ। अब आठ वसु निम्न है-

1) आप
2) ध्रुव
3) सोम
4) विष्णु
5) अनिल
6) अनल
7) प्रत्यूष
8) प्रभास

इनमें से जो प्रभास है, वही गंगा के आठवें पुत्र के रूप में जन्मे और देवव्रत के नाम से रहते हुए आगे चलकर भीष्म कहलाए, जिन्हें हम भीष्म पितामह के रूप में जानते हैं। इनआठ वसुओं में अग्नि मेरी ही विभूति है।जब हम बारह आदित्यों आठ वसुओं तथा ग्यारह रूद्रों का नाम लेते हैं तो इनमें अग्नि का नाम कहीं नहीं आता है, लेकिन अग्नि को वसुओं में अनल नाम से जाना जाता है। शिखर पर्वतों में, सुमेरु पर्वत मेरी ही विभूति है।

10.24

पुरोधसां(ञ्) च मुख्यं(म्) मां(म्), विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं(म्) स्कन्दः(स्),सरसामस्मि सागरः॥10.24॥

हे पार्थ ! पुरोहितों में मुख्य बृहस्पति को मेरा स्वरूप समझो। सेनापतियों में कार्तिकेय और जलाशयों में समुद्र मैं हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! पुरोहितों में मुख्य बृहस्पति मुझको ही जानो, देवताओं के गुरु बृहस्पति हैं। बृहस्पति नीति को हम मानते हैं। ज्योतिष शास्त्र में कहा गया है कि तर्जनी अंगुली के नीचे का जो भाग होता है, वह बृहस्पति का होता है जिसका यह बृहस्पति तीव्र होता है। वही मुखिया रहता है। घर में, समाज में कार्यक्रमों में उसकी सभी मानते हैं। जिसका बृहस्पति का वह भाग जितना अधिक उठा रहता है, वह उतना ही तेजस्वी होता है। ऐसा ज्योतिष में कहा जाता है। सेनापतियों में स्कंद भी मैं हूँ। स्कंद का दूसरा नाम कार्तिकेय है। कार्तिकेय दक्षिण भारत के प्रमुख देवता है।

स्कंद उनका नाम कुछ इस प्रकार पड़ा है कि ---- तारकासुर नामक एक दैत्य था। उस दैत्य को ब्रह्मा जी और शिव जी ने मिलकर यह वरदान दिया कि वह किसी भी देवी देवता द्वारा वध्य नहीं है। शिवजी के तेज से जो संतान उत्पन्न होगी उसी के द्वारा उसका वध किया जा सकता है। काफी विचार-विमर्श के बाद देवताओं ने जाकर शिव जी से प्रार्थना की। उस समय वे समाधि भाव में थे, देवताओं की प्रार्थना पर भगवान शिव ने अपने तेज का स्खलन कर दिया। इस स्खलन को कोई संभाल नहीं पाया तो उसे गंगा में प्रवाहित कर दिया गया। पर गंगा जी भी इसे संभाल नहीं पाई तो उसे झाड़ियों में डाल दिया गया। झाड़ियों में से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके आसपास इतना तेज था कि वहाँ से गमन करते हुए सप्त ऋषियों की पत्नियाँ वहाँ ठहर गईं। जिन्हें कृतिकायें कहते हैं। उनमें से एक तो आगे बढ़ गई। बाकी छहों ने इस बालक के तेज को देखा और वहीं ठहर गई। उन्होंने सोचा कि इस बालक का कोई नहीं तो हम इसको अपना बालक मानेंगे। उन्होंने सोचा कि यह बालक अभी-अभी जन्मा है। इसे भूख लगी होगी। क्यों ना इसको अपना दूध पिलायें। ऐसा विचार कर ही रही थी कि शिवजी के तेज से उत्पन्न हुआ यह बालक तुरंत छह शरीर वाला हो गया और उन कृतिकाओ ने अपना दूध पिलाया। इन कृतिकाओं के दुग्ध से इस बालक का वर्धन हुआ। इसलिए ये कार्तिकेय कहलाए। जब ये कृतिकायें इन्हें लेकर शिव जी के पास गईं कि ये आप का पुत्र है। तब पार्वती जी ने कहा है कि भले ही मेरी कोख से न जन्मा हो पर है तो मेरे ही पति का तेज। इसलिए पार्वतीजी ने कहा कि- आओ पुत्र तुम्हारा आलिंगन करती हूँ और जैसे ही पार्वती जी ने उनका आलिंगन किया तो छह शरीर एक हो गए। पर सिर छह ही रह

गए। तब से यह षडमुख कहलाए।

शिव जी के परिवार में शिव जी स्वयं पंचानन अर्थात पाँच मुख वाले हैं, कार्तिकेय षडानन अर्थात छह मुख वाले हैं और गणेश गजानन अर्थात गजमुख वाले हैं।

इस परिवार में गणेशजी के जन्म लेने के बाद आपस में दोनों भाइयों के बीच ईर्ष्या रहती थी। एक बार इस बात पर विचार हुआ कि दोनों भाइयों में श्रेष्ठ कौन है? पार्वती जी ने कहा कि जो इस ब्रह्मांड की सात परिक्रमा पहले लगाएगा वही प्रथम पूजा का अधिकारी होगा और श्रेष्ठ कहलाएगा। कार्तिकेय जी की की सवारी तो मोर थी। मोर फुर्तीला होता है। कार्तिकेय जी तो तेजी से प्रदक्षिणा के लिए निकल पड़े, किन्तु गणेश जी ने सोचा एक तो मेरा शरीर इतना भारी, ऊपर से मेरा वाहन भी चूहा। यह चिंतन का विषय था। ज्ञानिनामग्रगण्यम्--- ज्ञानियों में तो बुद्धि दाता है। गणेश जी ने तभी माता-पिता को एक साथ बैठाकर सात परिक्रमा की, क्योंकि माता पिता के चरणों में ही संपूर्ण ब्रह्मांड होता है। जब देवताओं को निर्णय लेने के लिए कहा गया तो उन्होंने गणेश जी को प्रथम पूजा का अधिकारी बताया। कार्तिकेय पहले भी गणेशजी से चिढ़ते थे और इस घटना के बाद तो और भी अधिक चिढ़ गए। श्री कार्तिकेय पहले देवता थे, जो उत्तर छोड़कर दक्षिण गए। दक्षिण भारत में कार्तिकेय भगवान के मंदिर प्रचुर मात्रा में मिलेंगे। मलेशिया में कार्तिकेयजी का भव्य मंदिर है। विशाल मेला भी लगता और वहाँ यह मुर्गुन नाम से पूजे जाते हैं और प्रचलित हैं। हमारे सभी पुराणों में स्कंद पुराण बहुत विस्तृत है। इसमें बहुत सारी कथाएं हैं-

एक बार इंद्र भी कार्तिकेय जी से हार गए थे तो इंद्र ने कहा कि आप ही राजा बन जाइए। तब कार्तिकेय जी ने कहा कि शासन करने की जो योग्यता आप में है, वह मुझ में नहीं है। इसलिए आपको ही शासन करना चाहिए। तब इंद्र के प्रस्ताव पर स्कंद देवताओं के सेनापति बन गए। सेनापति बनने के बाद स्कंद ने राक्षसों से युद्ध करते हुए उनकी सेना को हरा दिया, इस प्रकार अनेक कथाएँ इस पुराण में हैं।

सारी नदियों में, जलाशयों में-- सागर मैं हूँ। सारी नदियाँ सागर में आकर मिलती हैं, पर सागर कभी भी अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं करता। प्रायः हम सुनते हैं कि नदियों में बाढ़ आ गई है, पर सागर में कभी बाढ़ नहीं आती है। कितनी भी नदियाँ आकर मिले वह एक इंच भी बढ़ता नहीं है। सभी शुद्ध-अशुद्ध नदियों का जल सागर अपने में समा लेता है। ऐसे श्रेष्ठ जलाशयों में, सागर मैं ही हूँ।

10.25

महर्षीणां(म्) भृगुरहं(ङ्),गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां(ञ्) जपयज्ञोऽस्मि, स्थावराणां(म्) हिमालयः॥10.25॥

महर्षियों में भृगु और वाणियों (शब्दों) में एक अक्षर अर्थात् प्रणव मैं हूँ। सम्पूर्ण यज्ञों में जप यज्ञ (और) स्थिर रहने वालों में हिमालय मैं हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं कि महर्षियों में मैं भृगु हूँ। भृगु, ये ब्रह्माजी के पुत्र हैं। बृहस्पति तथा शुक्राचार्य के पिता हैं। भृगु जी की पुत्री का नाम लक्ष्मी जी है। ये भगवान विष्णु के ससुर भी हैं। एक बार इस बात पर चर्चा हुई कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश में सर्वश्रेष्ठ कौन है? पृथ्वी पर वार्ता चली। सब ने मिलकर भृगु ऋषि को उत्तरदायित्व दिया कि आप ही पहचानें कि सर्वश्रेष्ठ कौन है?

भृगु जी सर्वप्रथम ब्रह्माजी के पास गए। ब्रह्माजी उनके पिता हैं। उनको तो परीक्षा लेनी थी, तो वे ब्रह्माजी को प्रणाम किए बिना ही आसन पर बैठ गए। जैसे ही बैठे, ब्रह्मा जी चिढ़ गए। ब्रह्मा जी ने गुस्से में अपशब्द कहना प्रारंभ कर दिया। भृगु जी ने तुरंत वहाँ से प्रस्थान किया। अब वह शिवजी के पास गए। शिवजी तो भोले भंडारी है। उन्होंने शिवजी को जाते ही डाँटना शुरू कर दिया कि आपके जो भी मन में आता है, वरदान दे देते हो। आप तो औघड़ दानी हो विचार भी नहीं करते। आप तो दानी होकर कुछ भी दे देते हो। भृगु जी बोलते ही गए तो शिव जी कुछ बोले नहीं, पर अपने त्रिशूल को हाथ लगाया, तो भृगु जी क्षमा मांगते हुए वहाँ से निकल गए। दो की परीक्षा तो हो गई थी। आगे विष्णुजी के पास गए तो भगवान तो शेष शैय्या पर शयन कर रहे थे

और लक्ष्मी जी उनकी चरण सेवा कर रही थी। विष्णु भगवान तो उनके जमाता थे। भगवान चिरनिंद्रा में सो रहे थे। लक्ष्मी जी मुस्कुराई --कहा कि निंद्रा में है। आप शांति से खड़े रहिए। थोड़ी देर तो फिर ऋषि खड़े रहे। फिर उन्होंने सोचा कितनी देर खड़ा रहूँगा। परीक्षा भी तो लेनी है। उन्होंने आवाज दी-- नारायण! किन्तु नारायण,अपने स्वप्न लीला में व्यस्त थे। कुछ गुस्सा आया तो उन्होंने अपना दायाँ पाँव भगवान विष्णु की छाती पर दे मारा। भगवान हड़बड़ा कर उठे। उठने पर भगवान ने क्रोध नहीं किया, कहा कि कहीं आप को लगी तो नहीं। मेरी छाती बहुत कठोर है और आपके पैर बहुत सुकोमल हैं। तब उन्होंने कहा कि परीक्षा तो हो गई, फैसला भी हो गया। आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं। आपसे उत्तम कोई भी नहीं है। मैं तो आपकी परीक्षा लेने आया था। आपने मेरी क्रिया का ऐसा उत्तर दिया। इसकी मुझे कल्पना भी नहीं थी। भृगुजी तो चले गए पर, भगवान विष्णु ने उनके चरणों को सदैव अपने वक्ष पर धारण कर लिया। जब भी हम भगवान विष्णु के चित्र को देखते हैं तो हमें उनके वक्षस्थल के बीचोबीच एक चरण के निशान है जिसे हम भृगुलता कहते हैं। भगवान ने सदा-सदा के लिए ऋषि के चरणों को अपने वक्ष पर धारण कर लिया। पर लक्ष्मी जी को यह बात पसंद नहीं आई। उन्होंने कहा कि एक तो भगवान विष्णु सभी देवी देवताओं के लिए, महर्षियों के लिए पूजनीय हैं और ऊपर से आप के जमाता भी है, ऐसे में आपने चरणों का प्रहार उनके वक्ष स्थल पर किया। भले ही परीक्षा लेने हेतु किया। लक्ष्मीजी ने श्राप देते हुए कहा कि आप और आपके वंशज सदा के लिए निर्धन हो जायेंगें। मैं उन के पास नहीं जाऊंगी। भृगुजी ने माना कि मेरा व्यवहार अमर्यादित था, पर आपने हमारे वंशजों को क्यों श्राप दिया।? वापस आए तो आपस में वार्ता हुई। सभी भृगुजी को कहने लगे कि आप के कारण ही लक्ष्मीजी रुष्ट हो गई हैं। तब भृगुजी ने भृगु संहिता लिखी जो ज्योतिष पर आधारित है। साथ ही, यह भी कहा कि जो भी ब्राह्मण इस भृगु संहिता को पढ़ेगा, इसका अध्ययन करेगा, उसके चरणों में लक्ष्मी जी को आना ही पड़ेगा।

आज भी बड़े -बड़े राजनीतिज्ञ, खिलाड़ी, सभी अपनी हस्तरेखा पंडित को दिखाने जाते हैं। जो ज्योतिष शास्त्र को सिद्ध कर लेगा, उसके पास लक्ष्मी जी को आना ही पड़ेगा। इस प्रकार संहिता को भृगुजी के तप का बल मिला। सभी भृगु वंशी भार्गव कहलाए। ऐसे में सभी ब्राह्मण सप्त ऋषियों की संताने हैं। भगवान ने कहा कि शब्दों में मैं ओंकार हूँ। ऊँ को अपनी विभूति कहा है। सभी अक्षर तो शिवजी के डमरू से निकले हैं। सभी अक्षर या तो कंठ से या परा यानि ओष्ट से बोले जाते हैं या फिर मध्यमा यानि जिह्वा से बोले जाते है। सभी अक्षरों में एक या दो का समावेश होता है, पर ऊँ ऐसा एक शब्द है जिसमें मध्यमा, परा और कण्ठ तीनों का सम्मिलित प्रयास होता है। यज्ञ में जप यज्ञ मैं हूँ। वेदों में बहुत से यज्ञ का विधान है। किन्तु श्रीभगवान ने स्वयं को जप यज्ञ कहा है।

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि॥

सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं॥
कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पापा॥

अर्थात कलियुग में न तो योग और यज्ञ है और न ही ज्ञान है। यहाँ पर श्रीरामजी का गुणगान ही एकमात्र आधार है। अतः जो सभी आशाएँ और विश्वास छोड़कर जो श्रीराम जी का भजन करता है और प्रेमसहित उनके गुणसमूहों को गाता है। वही जीव भवसागर से पार उतर जाता है, इसमें कोई भी आशंका नहीं। नाम का प्रताप कलियुग में प्रत्यक्ष है। कलियुग की यह एक पवित्र महिमा है यह है कि यहाँ मानसिक पुण्य कर्म तो होते हैं, पर मानसिक पाप कर्म नहीं होते है। नाम जप यज्ञ से ज्यादा महिमा किसी बात की नहीं है। जितना हो सके अपने जीवन में जप का बढ़ाना चाहिए। जप से अपने पाप वृत्तियों का व प्रारब्ध के कर्मों का नाश होता है।अपने कुसंस्कारों का नाश होता है। अपने पुण्यों में वृद्धि होती है। भक्ति बढ़ती है और अपनी वृत्ति सत्व में स्थित हो जाती है। इसलिए किसी भी कार्य को करने के साथ ही अंतर्मन में नाम जप चलते रहना चाहिए। किसी भी मंत्र का नाम जप करें पर अनवरत चलते रहना चाहिए। निरंतर जप करते रहने से एक समय के बाद यह जप, अजपा हो जाता है। फिर आप नींद में जम्हाई भी लेते हैं तो उस मंत्र की ध्वनि ही निकलती है। जप की निरंतर चलने की क्रिया होने पर यह सिद्ध हो जाता है। दिन भर चलते फिरते करने से यह आत्मसात होता है। कैसे भी करें माला पर, उंगलियों पर या फिर मोबाइल, पर करें क्योंकि यह जीवन के उत्थान का सबसे सरल और सुगम साधन है। साथ ही सबसे कल्याणकारी साधन भी है। भगवान ने कहा, अर्जुन शस्त्रों में मैं वज्र हूँ। अस्त्र और शस्त्र यह दो प्रकार के होते हैं। अस्त्र जो फेंक कर मारा जाए और जो हाथ में लेकर मारा जाए वह शस्त्र है।अस्त्र जैसे- चक्र, भाला, गोला दागना इत्यादि। शस्त्र जैसे खड्ग, वज्र इत्यादि। वज्र जो महाराज दधीचि की अस्थियों से निर्मित है।

10.26

अश्वत्थः(स्) सर्ववृक्षाणां(न्),देवर्षीणां(ञ्) च नारदः।
गन्धर्वाणां(ञ्) चित्ररथः(स्), सिद्धानां(ङ्) कपिलो मुनिः॥10.26॥

सम्पूर्ण वृक्षों में पीपल, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि (मैं हूँ)।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं कि वृक्षों में मैं पीपल हूँ। देवर्षियों में मैं देवर्षि नारद हूँ। गंधर्वों में श्रेष्ठ गंधर्व चित्ररथ मैं हूँ। चित्ररथ ने अर्जुन को गायन विद्या भी सिखाई थी। चित्ररथ की बहन चित्रांगदा अर्जुन की पत्नी थी। सिद्ध ऋषियों में मैं कपिल मुनि हूँ। जिन्होंने ने सांख्य प्रणाली एवं भक्ति योग सिखाया।

10.27

उच्चैःश्रवसमश्वानां(म्),विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं(ङ्) गजेन्द्राणां(न्), नराणां(ञ्) च नराधिपम्॥10.27॥

घोड़ों में अमृत के साथ समुद्र से प्रकट होने वाले उच्चैःश्रवा नामक घोड़े को, श्रेष्ठ हाथियों में ऐरावत नामक हाथी को और मनुष्यों में राजा को मेरी विभूति मानो।

विवेचन:- श्रीभगवान आगे कहते हैं कि अश्वों में मैं समुद्र मंथन के समय अमृत के साथ निकलने वाला उच्चैश्रवा अश्व हूँ और गजों में दिव्य गज ऐरावत मैं हूँ। मनुष्यों में राजा को मेरी विभूति मानो।

10.28

आयुधानामहं(म्) वज्रं(न्), धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः(स्), सर्पाणामस्मि वासुकिः॥10.28॥

आयुधों में वज्र (और) धेनुओं में कामधेनु मैं हूँ। सन्तान-उत्पत्ति का हेतु कामदेव मैं हूँ और सर्पों में वासुकि मैं हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान आगे कहते हैं कि गौओं में, मैं कामधेनु हूँ। कामधेनु स्वर्ग में निवास करती है। एक बार वशिष्ठ मुनि स्वर्ग गए। वहाँ पर उन्होंने कामधेनु का दूध पिया। दूध बहुत ही स्वादिष्ट था। उन्हें बहुत अच्छा लगा। उन्होंने पूछा कि यह दूध किस गाय का है? तब इंद्र ने कहा, कामधेनु का है और आपको अच्छा लगा तो आप कामधेनु ले जाइए। तब वशिष्ठ मुनि ने कहा, नहीं। कामधेनु की शोभा स्वर्ग लोक में ही है। कभी इनकी पुत्री होगी तो मुझे दे दीजिएगा। जब कामधेनु की पुत्री नन्दिनी हुई तो राजा इंद्र ने उसको वशिष्ठ मुनि को दे दिया। उसी नन्दिनी के झगड़े में राजा कौशिक वशिष्ठ मुनि से बैर लेकर विश्वामित्र बने। बहुत ही सुंदर व्याख्यान है-

नन्दिनी को वशिष्ठ मुनि से छीनने के चक्कर में अपनी चतुरंगिनी सेना को गँवा दिया और इतना क्षोभ हुआ कि अपने क्षत्रियत्व को धिक्कारते हुए कहा कि एक क्षत्रिय ब्राह्मण के तेज से हार गया। इसी शरीर को मैं ब्राह्मण में परिवर्तित करूंगा। इतनी कठिन तपस्या की राजा कौशिक ने तपस्या के बल पर क्षत्रिय से ब्राह्मणत्व को पाया। फिर ब्राह्मणत्व से ऋषित्व को प्राप्त किया। फिर भी नहीं माने, ऋषित्व से राजऋषित्व को प्राप्त किया। राजर्षि से महर्षित्व को प्राप्त किया। अंत में ब्रह्मर्षि कहलाए। हमारे काल में दो ही ब्रह्मर्षि कहे जाते हैं- वशिष्ठ मुनि तथा विश्वामित्र मुनि। कैसे पुरुषार्थ द्वारा मनुष्य के लिए सब कुछ प्राप्य है। यह राजा कौशिक ने कर दिखाया। यह सामान्य जन के लिए प्रमाण है कि कैसे विश्वामित्र ने क्षत्रिय से महर्षि तक की यात्रा की।

शास्त्र युक्त भोग की भगवान आज्ञा देते हैं। कामवासना में अपनी वृत्ति लगाकर अन्याय से उसे प्राप्त करना गलत है। भगवान कहते हैं कि शास्त्रोक्त विधि से कामदेव मैं हूँ और सर्पों में सर्पों का राजा वासुकि मैं हूँ।

10.29

अनन्तश्चास्मि नागानां(म्), वरुणो यादसामहम्।
पितॄणामर्यमा चास्मि, यमः(स्) संयमतामहम्॥10.29॥

नागों में अनन्त (शेषनाग) और जल-जन्तुओं का अधिपति वरुण मैं हूँ। पितरों में अर्यमा और शासन करने वालों में यमराज मैं हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान आगे कहते हैं कि हेअर्जुन! नागों में शेषनाग मैं हूँ। शेषनाग के अवतार लक्ष्मण जी और बलराम जी हैं और जलचरों का अधिपति वरुण भी मैं ही हूँ। पित्रों में मैं अर्यमान हूँ। पितृलोक, मनुष्य लोग के ऊपर जो सात लोक है, उनमें से एक पितर् लोक है। हमारे जो तीस दिन होते हैं, वह पितरों का एक दिन होता है। पितर् भी देव के भांति हमें वरदान देने का सामर्थ्य रखते हैं। किसी के मर जाने पर हम दस दिनों तक अशौच मानते हैं। उस समय हम ना तो मंदिर जाते हैं, ना विग्रह को स्पर्श करते हैं क्योंकि यह माना जाता है कि इन दिनों में वह आत्म तत्त्व प्रेत योनि में यही आस-पास हो सकता है। इसलिए सब उसको गरुड़ पुराण सुनाते हैं ताकि उसकी मुक्ति हो जाए। दशमी के दिन सपिण्डी क्रिया करते हैं, जो खुले में नहीं होती है। जिसे सिर्फ क्रिया करने वाला और करवाने वाला ही देखता है। यह क्रिया बंद दरवाजों के बीच की जाती है। एक सींक में नए तथा पुराने पिंड को पिरोया जाता है और कहा जाता है कि अभी ये हमारे पितर् हो गए। अब जब भी हमारे घर में सुख कार्य होंगे तो पितरों में इस पितर् को भी स्थान मिलेगा। यह पितृलोक में वास करने वाले देवता भी हो सकते हैं। श्रीभगवान ने कहा कि पितरों में मैं अर्मान हूँ। पितृलोक में चार मुख्य देवता होते हैं-

1) काव्यवाह
2) अनत
3) सोम
4) अर्यमान

इन चारों का यह काम है कि इन पितरों के निमित्त जो भी श्राद्ध कार्य होंगे, उनको पहुंचाने का कार्य करते हैं। जब हम कहते हैं कि अगर हम गायों को खिलाएंगे तो हमारे पितरों को कैसे मिल जाएगा तो यह कार्य अर्यमान इत्यादि प्रमुख देवता करते हैं। इन चारों का दायित्व होता है कि ये पितरों तक उनका श्राद्ध पिण्ड आदि पहुँचाएँ। वे पितर, देवता से कम शक्तिशाली होते हैं। पर इनमें वरदान देने की शक्ति होती है। जब हम अपने पितरों को तर्पण देते हैं। पिण्ड देते हैं तो हमारे दिए गए पिण्डों से प्रसन्न होकर यह हमें आशीर्वाद देते हैं जिससे हमारे यहाँ संतति की वृद्धि होती है। हमारे कष्ट भी हरते हैं। इसलिए विवाह आदि कार्यों में पितरों के पूजन का सर्वाधिक महत्त्व है। यदि वे किसी प्रेत योनि में हो तो भी हमारे दिए गए पिण्ड से इस योनि से मुक्त होकर पितर् बन जाते हैं। दस दिन की प्रक्रिया में हम घर में, घट में सुबह-शाम पानी भरते हैं जिससे इनकी प्यास तृप्त होती है। दस दिनों तक तृप्त करने का दायित्व हमारा होता है। दशमी के दिन सपिण्डी क्रिया के बाद वे पितृ लोक के देवता द्वारा संभाले जाते हैं और हम उत्तरदायित्व से निवृत्त हो जाते हैं। इस प्रक्रिया से पितरों को शांति होती है। यह पितृलोक चंद्रमा के ऊर्ध्व भाग में स्थापित होता है। पितरों में मैं अर्यमान हूँ और शासन करने वालों में मैं यमराज हूँ।

10.30

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां(ङ्), कालः(ख्) कलयतामहम्।
मृगाणां(ञ्) च मृगेन्द्रोऽहं(म्), वैनतेयश्च पक्षिणाम्॥10.30॥

दैत्यों में प्रह्लाद और गणना करने वालों (ज्योतिषियों) में काल मैं हूँ तथा पशुओं में सिंह और पक्षियों में गरुड मैं हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हे अर्जुन ! दैत्यों में मैं प्रह्लाद हूँ क्योंकि वे सुकर्मी तथा पुण्य कर्मी हैं। गणना करने वालों में मैं समय हूँ। जितने भी काल की गणना है, वह मैं ही हूँ क्योंकि वह कभी बदलता नहीं, कभी वापस आता नहीं। उससे बलवान कुछ भी नहीं है। इसलिए गणना करने वालों में समय मैं ही हूँ और पशुओं में मृगराज सिंह हूँ। हम पशुओं में मृग का अर्थ हिरण कर लेते हैं, पर मृग का अर्थ हिरण नहीं होता। चार पैरों पर विचरण करने वाले सभी जीव मृग कहलाते हैं। सिंह भी मृग है अर्थात् मृगेंद्र जो मृगों का राजा - सिंह। पक्षियों में मैं विनीता का पुत्र गरुड़ मैं हूँ। गरूड़जी को भगवान ने अपने विभूति बताया है।

गरुड़ जी भगवान विष्णु के वाहन है। मानस के उत्तरकाण्ड में काकभुषण्डिजी तथा गरूड़जी के संवाद है --- एक बार गरुड़

जी को यह भ्रम हो गया था कि यह कैसे भगवान हैं? यह कैसे नारायण के अवतार हैं जिनके नागपाश को काटने के लिए मुझे बुलाया जा रहा है। वे विष्णु भगवान के पास गए। विष्णु भगवान ने उन्हें भगवान शिव के पास भेज दिया। भगवान शिव ने कहा कि काक ही जाने काक की भाषा। उन्हें काकभुसुण्डि के पास भेज दिया।

10.31

पवनः(फ्) पवतामस्मि, रामः(श्) शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां(म्) मकरश्चास्मि, स्रोतसामस्मि जाह्नवी॥10.31॥

पवित्र करने वालों में वायु (और) शास्त्रधारियों में राम मैं हूँ। जल-जन्तुओं में मगर मैं हूँ। बहने वाले स्त्रोतों में गंगाजी मैं हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान आगे कहते हैं कि मैं पवित्र करने वाली वायु हूँ। हमारी विचारधारा रहती है कि यदि हम एक गिलास को जल से धो लेते हैं या मिट्टी से माँज कर शुद्ध कर लेते हैं, तो वह शुद्ध हो जाता है, पर वह पवित्र नहीं माना जाता है। शास्त्र विधि के अनुसार जल तो स्वच्छ करता है, पर वायु इसे पवित्र करती है। जल व मिट्टी से स्वच्छ कर सकते हैं पर शुद्ध वायु ही करती है। यदि सोने के पात्र में जल पिया जाए और उस पात्र को धोए बिना ही रख दिया जाए। यदि वह वायु से सूख जाता है तो वह शुद्ध माना जाता है। चांदी का पात्र जिसमें पानी पिया और उसे जल से धो दिया और वह वायु से सूख जाता है तो वह भी शुद्ध माना जाता है। पर अन्य पात्रों को बिना मिट्टी व साबुन के स्वच्छ भी नहीं माना जाता। सोने के पात्र को केवल वायु से, चाँदी के पात्र को जल तथा वायु से शुद्ध करते हैं तथा अन्य पात्रों को शुद्ध होने के लिए मिट्टी, जल तथा वायु तीनों की आवश्यकता होती है।

शस्त्रधारियों में मैं राम हूँ। कृष्ण नहीं कहा क्योंकि रामबाण अचूक माना जाता है। साधारण बोलचाल में कहते हैं कि दवा खा लो, यह रामबाण है। राम जी का बाण कभी खाली नहीं जाता है। राम जी का बाण लौट कर वापस तरकश में भी आता है। रामबाण अचूक है, लौटकर भी तरकस में आता है। इसलिए राम जी को शस्त्र धारियों में श्रेष्ठतम विभूति बतलाया गया है। भगवान ने अपनी विभूति को भगवान राम में बतलाया है। मछलियों में मैं मगर हूँ। पच्चीस सौ किलोमीटर की गंगा जी है। गंगोत्री से बांग्लादेश तक। गंगोत्री से ऋषिकेश तक चौदह स्थानों में चौदह प्रयाग पड़ते हैं। यहाँ के यह पवित्र स्थान माने जाते हैं।

जैसे- उत्तराखंड के प्रसिद्ध पंच प्रयाग

1) देवप्रयाग
2) रुद्रप्रयाग
3) कर्णप्रयाग
4) नन्दप्रयाग
5)विष्णुप्रयाग
अन्य प्रयाग:-
6) सोन प्रयाग
7) केदार प्रयाग
8) कालसी प्रयाग
9) प्रयाग राज
10) केशव प्रयाग

मैदान स्थानों में तीन प्रमुख तीर्थस्थल माने जाते हैं-- हरिद्वार, प्रयाग तथा गंगासागर। ऋषिकेश से पहले चौदह, ऋषिकेश के बाद तीन। ये सभी गंगा स्थान गंगा स्नान के लिए पवित्र माने गए हैं। ये जाह्नवी जो स्वर्ग में पधारी है, यही मेरी विभूति भी है।

10.32

सर्गाणामादिरन्तश्च,मध्यं(ञ्) चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां(म्), वादः(फ्) प्रवदतामहम्॥10.32॥

हे अर्जुन ! सम्पूर्ण सृष्टियो के आदि, मध्य तथा अन्त में मैं ही हूँ। विद्याओं में अध्यात्मविद्या (ब्रह्म विद्या) और परस्पर शास्त्रार्थ करने वालों का(तत्त्व-निर्णय के लिये किया जाने वाला) वाद मैं हूँ।

विवेचन:-अर्जुन सृष्टि का आदि और अंत मैं हूँ तथा मध्य भी मैं ही हूँ। विद्याओं में अध्यात्म विद्या मैं ही हूँ तथा प्रवदताम् वादः, परस्पर विवाद करने वालों के बीच परस्पर निर्णय किए जाने वाला वाद भी मैं हूँ। यह समझने योग्य बात है कि --भगवान कहते हैं कि विवाद में वाद मैं ही हूँ। सम्+ वाद =संवाद। ये वाद तीन तरह के होते हैं। पहला है, जल्प इसमें होता है, अपना मण्डन दूसरों का खण्डन। जब रामजी तथा रावण युद्ध भूमि में एक दूसरे के सामने खड़े हुए तो रावण ने रामजी को बहुत कुछ कहा कि तुम तो तपस्वी हो, नंगे पैर खड़े हो। मुझसे क्या युद्ध कर पाओगे? अपनी खूब बड़ाई की और भगवान की निंदा की तब भगवान मुस्कुराए और प्रभु ने कहा, तुम जल्प कर रहे हो केवल अपनी महिमा का बखान कर रहे हो।

दूसरा होता है, वितण्डा इसमें अपना मण्डन नहीं होता है। केवल और केवल दूसरे का खम्डन होता है। जैसे आज - कल के विपक्षी लोग कर रहे हैं।

तीसरा होता है वाद, वाद भी दो तरह के होते हैं। पहला संवाद, दूसरा विवाद, विवाद में कौन सही है, यह निर्णय होता है और संवाद में क्या सही है, यह निर्णय होता है। भगवान कहते हैं कि वादों में, मैं संवाद हूँ। जहाँ सही और गलत के बीच सही को ढूँढा जाए, जहाँ सत्य का निर्णय हो सकता है, ऐसा संवाद मैं हूँ।

10.33

अक्षराणामकारोऽस्मि, द्वन्द्वः(स्) सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः(ख्) कालो, धाताहं(म्) विश्वतोमुखः॥10.33॥

अक्षरों में अकार और समासों में द्वन्द्व समास मैं हूँ। अक्षय काल अर्थात् काल का भी महाकाल (तथा) सब ओर मुख वाला धाता (सबका पालन-पोषण करने वाला भी) मैं ही हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! अक्षरों में मैं **अ** कार मैं हूँ, बिना अ कार के अक्षर अपूर्ण होते हैं। व्यंजन में अ लगाते हैं तो वह पूर्ण होता है। जैसे क्+अ= क, इस प्रकार सभी अक्षरों में अकार मैं हूँ। समासों में में द्वंद समास हूँ।

मुख्य समास चार प्रकार के होते हैं-

पहला **अव्ययीभाव समास** जैसे- यथाशक्ति, प्रतिक्षण आदि। इसमें पहला पद प्रधान होता है। जैसे - यथा, प्रति इत्यादि।

दूसरा **तत्पुरुष समास** होता है, जिसमें द्वितीय पद प्रधान होता है। जैसे अकाल पीड़ित, आराम कुर्सी, इसमें पीड़ित और कुर्सी मुख्य हैं।

तीसरा **बहुव्रीहि समास** में तीसरा पद प्रधान होता है। जैसे दशानन इसमें ना तो दश और ना ही आनन प्रधान है। इसका अर्थ है रावण, इसमें अर्थ की प्रधानता रहती है। दिगम्बर, धनंजय इत्यादि।

चौथा **द्वंद समास,** इसमें दोनों पद प्रधान होते हैं। जैसे सुख-दुःख, हानि- लाभ, जीवन-मरण इत्यादि भगवान ने कहा कि--

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।2.38।।

अर्थात जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान करके फिर युद्धमें लग जा। इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको प्राप्त नहीं होगा। भगवान ने द्वंद समास पर बहुत जोर दिया है। गीता में उन्होंने कहा है कि समासों में मैं द्वंद समास हूँ। महाकाल भी मैं ही हूँ।

10.34

मृत्युः(स्) सर्वहरश्चाहम्, उद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः(श्) श्रीर्वाक्च नारीणां(म्), स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा॥10.34॥

सबका हरण करने वाली मृत्यु और भविष्य में उत्पन्न होने वाला मैं हूँ तथा स्त्री-जाति में कीर्ति, श्री, वाक् (वाणी), स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा (मैं हूँ)।

विवेचन:-भगवान स्त्रियों के सात नाम लेते हैं-- कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा। इन सातों में पाँच तो दक्ष प्रजापति की कन्याएँ है। इसमें श्री लक्ष्मी हैं जो भृगु ऋषि की पुत्री हैं और वाक् ब्रह्मा जी की कन्या सरस्वती हैं।

10.35

बृहत्साम तथा साम्नां(ङ्),गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां(म्) मार्गशीर्षोऽहम्, ऋतूनां(ङ्) कुसुमाकरः॥10.35॥

गायी जाने वाली श्रुतियों में बृहत्साम और सब छन्दों में गायत्री छन्द मैं हूँ। बारह महीनों में मार्गशीर्ष (और) छः ऋतुओं में वसन्त मैं हूँ।

विवेचन:- अर्जुन वेदों में सामवेद में हूँ और सामवेद के विभिन्न र्छदों में वृहत्साम छंद को मेरी ही विभूति मानो, छंद में गायत्री छंद मैं हूँ। महर्षि विश्वामित्र ने देवी सरस्वती को प्रसन्न करके गायत्री मंत्र को सिद्ध किया और हमें प्रदान किया। भगवान कहते हैं गायत्री छंद में ही हूँ।

महाभारत काल में वर्ष का आरम्भ मार्गशीर्ष महीने से होता था। इसलिए भगवान ने कहा, महीनों में मार्गशीर्ष मैं ही हूँ। ऋतु में वसंत हूँ ना ठंड रहती है ना गर्मी बहुत ही सुहावनी ऋतु होती है।

10.36

द्यूतं(ञ्) छलयतामस्मि,तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि, सत्त्वं(म्) सत्त्ववतामहम्॥10.36॥

छल करने वालों में जुआ (और) तेजस्वियों में तेज मैं हूँ। (जीतने वालों की) विजय, (निश्चय करने वालों का) निश्चय (और) सात्त्विक मनुष्यों का सात्त्विक भाव मैं हूँ।

विवेचन:-यहाँ पर भगवान ने कुछ अलग कहा, सभी को लगेगा कि सभी अच्छी चीजें भगवान ने चुन ली हैं तो शैतान क्या अलग है? तो भगवान ने कहा कि छल करने वालों में मैं जुआ हूँ। मैं प्रभावशाली पुरुषों का तेज हूँ। मैं जीतने वालों में, विजय हूँ। साहसी पुरुषों का साहस और बलवानों का बल मैं ही हूँ।

10.37

वृष्णीनां(म्) वासुदेवोऽस्मि, पाण्डवानां(न्) धनञ्जयः।

मुनीनामप्यहं(म्) व्यासः(ख्), कवीनामुशना कविः॥10.37॥

वृष्णि वंशियों में वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण (और) पाण्डवों में अर्जुन मैं हूँ। मुनियों में वेदव्यास (और) कवियों में कवि शुक्राचार्य भी मैं हूँ।

विवेचन:-अर्जुन वृष्णिवंशी में वासुदेव अर्थात तेरा सखा और पाण्डवों में धनञ्जय अर्थात तू, हम दोनों मेरी ही विभूति हैं। मुनियों में वेद व्यास तथा कवियों में शुक्राचार्य भी मैं हूँ। कवि अर्थात त्रिकालज्ञ।

10.38

दण्डो दमयतामस्मि, नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं(ञ्) चैवास्मि गुह्यानां(ञ्), ज्ञानं(ञ्) ज्ञानवतामहम्॥10.38॥

दमन करनेवालोंमें दण्डनीति और विजय चाहनेवालोंमें नीति मैं हूँ। गोपनीय भावोंमें मौन और ज्ञानवानोंमें ज्ञान मैं हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान आगे कहते हैं हे अर्जुन! नीतियों में, मैं दंड हूँ, चार नीतियाँ होती है। साम-दाम-दंड-भेद, भगवान कहते हैं, दंड नीति मैं ही हूँ। सुन्दरकाण्ड में भगवान कहते हैं-

बोले राम सकोप तब। भय बिन होय न प्रीति।।

दंड मैं ही हूँ। गुप्त बातों में भी मैं हूँ। भगवान कहते हैं कि गुप्त रखने के भाव अर्थात भाव मैं ही हूँ और ज्ञानवानों का अर्पित ज्ञान भी मैं ही हूँ।

10.39

यच्चापि सर्वभूतानां(म्), बीजं(न्) तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्, मया भूतं(ञ्) चराचरम्॥10.39॥

और हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणियों का जो बीज (मूलकारण) है, वह बीज भी मैं ही हूँ; (क्योंकि) वह चर-अचर (कोई) प्राणी नहीं है जो मेरे बिना हो अर्थात् चर-अचर सब कुछ मैं ही हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं हे अर्जुन! जो भी इस संसार में चर, अचर, अच्छा, बुरा, बहुत बढ़िया, बहुत निंदनीय, जो भी सब है, सब मैं ही हूँ। मेरे अतिरिक्त कुछ नहीं है, सब कुछ मैं ही हूँ।

10.40

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां(म्), विभूतीनां(म्) परन्तप।
एष तूद्देशतः(फ्) प्रोक्तो,विभूतेर्विस्तरो मया॥10.40॥

हे परंतप अर्जुन ! मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है। मैंने (तुम्हारे सामने अपनी) विभूतियों का जो विस्तार कहा है, यह तो (केवल) संक्षेप से नामनात्र कहा है।

विवेचन:- बीसवें से उनचालीसवें श्लोक तक श्रीभगवान ने बयासी विभूतियाँ बताई हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि मेरी विभूतियों का अंत नहीं है। यह तो केवल तुम्हें संकेत मात्र के लिए बता दी गई हैं। तुमने पूछा था और तुम मेरे सखा और भक्त दोनों हो, पर यह नहीं सोचना कि सिर्फ यही मेरी विभूतियाँ है। मेरी विभूतियों का अंत नहीं है। तुम्हारे लिए बातों को मैंने अत्यंत संक्षेप में वर्णन किया है।

10.41

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं(म्), श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं(म्), मम तेजोंऽशसम्भवम्॥10.41॥

जो-जो ऐश्वर्ययुक्त, शोभायुक्त और बलयुक्त प्राणी तथा पदार्थ हैं, उस-उसको तुम मेरे ही तेज (योग अर्थात् सामर्थ्य) के अंश से उत्पन्न हुई समझो।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं कि इसलिए हे अर्जुन! जो भी विभूति युक्त, ऐश्वर्य युक्त, कांति युक्त वस्तु है उसको तू मेरे ही तेज के अंश की अभिव्यक्ति जान। भगवान यहाँ एक सूत्र देते हैं जो अत्यंत महत्वपूर्ण है। भगवान कण-कण में है, यह सत्य है पर हम कण- कण की पूजा तो नहीं कर सकते। इसलिए जहाँ तुम्हें ऐश्वर्य दिखता है, विभूतियाँ दिखती है, कांति दिखाई देती है, शक्ति दिखती है जहाँ भी तुम्हें यह विशेषता दिखे। उसे ही तू मेरा तेज मान। यह सभी के लिए सुगम है। यह मानते हुए तुम कण-कण में मेरी छवि को देख सकोगे, तो कण- कण की उपासना करने योग्य बन जाओगे।

10.42

अथवा बहुनैतेन, किं(ञ्) ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं(ङ्) कृत्स्नम्, एकांशेन स्थितो जगत्॥10.42॥

अथवा हे अर्जुन ! तुम्हें इस प्रकार बहुत-सी बातें जानने की क्या आवश्यकता है? (जबकि) मैं (अपने किसी) एक अंश से इस सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके स्थित हूँ अर्थात् अनन्त ब्रह्मांड मेरे एक अंश में है।

विवेचन:-श्रीभगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! जो कोटि कोटि ब्रह्मांड दिखते हैं, वह मेरे एक अंश मात्र से बने हुए हैं। मेरा एक अंश इतना विशाल है तो मेरी शक्तियों को कहाँ जान सकोगे? आभूषणों में हम आभूषण की कृति देखते हैं। कितना सुंदर हार है! कितना सुंदर कमर बंद है! पर इन सबके अंदर जो स्वर्ण है। वह एक ही तत्त्व है। चाहे वह कुंडल हो या हार हो। इस स्वर्ण तत्त्व को जो पहचान जाए वही मेरी विभूतियों को जान जाता है। यह कहकर भगवान ने यहाँ इस बात को सम्पूर्ण किया।

प्रश्नोत्तरी:-

प्रश्नकर्ता:-कमलेश गोयल जी

प्रश्न:-वसु और पंचभूत दोनों में जो अग्नि है वह क्या एक ही है?

उत्तर:-- पंचमहाभूत में जो अग्नि है उसका जो प्रतिष्ठाता देवता है, यहाँ इस देवता की बात हो रही है। यहाँ पर अग्नि तत्त्व के रूप में है। देवताओं के तीन स्वरूप होते हैं-

अधिदैविक
अधिदैहिक
अधिभौतिक

अधिदैविक स्वरूप में जो है, वह वसु है और अधिभौतिक स्वरूप में जो आग हम देखते हैं, वह है। अग्नि के दो स्वरूप हम देखते हैं।

प्रश्नकर्ता:--कमलेश गोयल जी

प्रश्न:- क्या देह दान करना चाहिए या नहीं इस संशय का निवारण करें?

उत्तर:- दधीचि ऋषि ने जब देह दान किया तो वे देह छूटने के पहले ही प्रयाण कर गए थे। अगर उतना योग बल आपके पास है तो आप देह दान कर सकते हैं। दधीचि ऋषि को अपना अगला जन्म नहीं लेना था। वैसे भी वो सिद्धि प्राप्त महात्मा थे। हमें अगला जन्म लेना होता है तो चिंतन की आवश्यकता रहती है।

प्रश्नकर्ता :--महाराज कृष्ण धरजी,

प्रश्न:- घटआकाश और महा आकाश तो समझ आया। पर चित्ताकाश क्या है?

उत्तर:- चित्ताकाश अलग बात है। वह देखने में एक शब्द के संरचना एक जैसी ही प्रतीत होती है। चित्ताकाश अर्थात हमारे चित्त का आकाश। यह सत्य -चित -आनंद वाले ईश्वर के स्वरूप का वर्णन है। जब हमारा चित्त उस परम सत्ता का अनुभव कर लेता है। शिवोहम् शिवोहम् शिवोहम्, इस अनुभूति को प्राप्त कर लेता है तो वह चित्ताकाश की अनुभूति है, जब चित्त उस स्थिति में आ जाता है, उस अनुभव से लाभान्वित होने लगता है तो वह चित्ताकाश कहलाता है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'विभूतियोग' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||